2. पारिस्थितिकी और प्रर्यावरण

Ecology and Enviornment

'Ecology' शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्द 'oikos' और 'logos' से मिलकर बना है, जिनका अर्थ क्रमशः आवास (dwelling) और अध्ययन (Study) है। अतः जीवधारियों और उनके आवासों के बीच होने वाले पारस्परिक सम्बन्ध के अध्ययन को ही पारिस्थितिकी 'ecology' कहते है। आधुनिक विचारों को ध्यान में रखते हुये 1963 में ओडम ने "पारिस्थितिकी को प्रकृति की संरचना एवं प्रक्रिया का अध्ययन" बतलाया है "Ecology is the study of structure and function of nature" इसके बाद 1970 में Phillipson ने बताया कि पारिस्थितिकी विज्ञान की वह शाखा है जिसके द्वारा जीवों, उनके चारों ओर के पर्यावरण तथा उसमें पाये जाने वाले अन्य सभी जीवों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन करते हैं।" पारिस्थितिकी से हमें निम्न बातों का भी ज्ञान प्राप्त होता है– (1) जीवों एवं पर्यावरण के बीच पारस्परिक सम्बन्ध, (2) अपने प्राकृतिक पर्यावरण के अनुसार जीवों में संरचनात्मक 'structural' और प्रकियात्मक 'functional' सम्बन्ध, (3) जीवों एवं पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों में पाई जाने वाली विविधताएँ, (4) इन पारस्परिक सम्बन्धों का उद्विकास, (5) प्रकृति की जैविक उत्पादकता और (6) मानव जाति की भलाई के लिये प्रकृति का उपयोग।

पारिस्थितिकी का वर्गीकरण

पारिस्थितिकी को निम्न दो शाखाओं में विभक्त किया जा सकता है–

(1) **स्वपारिस्थितिकी (Autecology)**– जब किसी एक जीव विशेष अथवा एक ही जाति के सभी के सामूहिक जीवन (जिसमें प्रजनन, वितरण आदि सभी तथ्य शामिल हैं) पर पर्यावरण के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है तो इसे स्वपारिस्थितिकी कहते है।

(2) **संपारिस्थितिकी (Synecology)**– जब किसी एक स्थान पर रहने वाले सभी जन्तुओं एवं पौधों के जीवन का (किसी जाति विशेष के जीवन का नहीं, जैसा कि स्वपारिस्थितिकी में करते है, अध्ययन किया जाता है तो इसे संपपारिस्थितिकी कहते हैं। इस प्रकार संपपारिस्थितिकी के अन्तर्गत पौधों और जन्तुओं को विविध जातियों के बीच तथा पर्यावरण और सजीव तन्त्रों के बीच होने वाले पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न पारस्थितियों के अनुसार संपपारस्थितिकी निम्न चार प्रकार की होती है–

(1) **समष्टि पारिस्थितिकी (Population ecology)**– समष्टि पारिस्थितिकी में, एक ही जाति के शुद्ध जीवों (pure stands) को इकाई मानकर अध्ययन किया जाता है।

(2) **समुदाय पारिस्थितिकी (Community ecology)**– समुदाय पारिस्थितिकी में एक स्थान पर रहने वाली विभिन्न जातियों के जीवों के अलग–अलग समूहों का अध्ययन किया जाता है।

(3) **बायोम पारिस्थितिकी (Biome ecology)**– बायोम पारिस्थितिकी में किसी एक क्षेत्र में भिन्न–भिन्न समुदायों को अध्ययन की इकाई बनाया जाता है और उनकी पारस्परिक कियाओं का अध्ययन किया जाता है।

(4) **इकोतन्त्र पारिस्थितिकी (Ecosystem ecology**)– ईकोतन्त्र पारिस्थितिकी में सम्पूर्ण तन्त्रों (systems) को अध्ययन की इकाई बनाया जाता है तथा प्रत्येक तन्त्र के सजीव तथा निर्जीव अवयवों एवं उनकी पारस्परिक कियाओं का अध्ययन किया जाता है। क्योंकि इनमें तन्त्रों का पारिस्थितियों अध्ययन होता है इसलिए इन्हें ईकोतन्त्र (ecosystems) या ecological complexes या ecological systems कहते है। इस प्रकार किसी स्थान को पारिस्थितिकी का अध्ययन करने के लिए ecosystem ecology एक अत्यन्त जटिल साधन होता है।

अंग्रेजी शब्द "Ecosystem" (ईकोतन्त्र) का प्रयोग सबसे पहले Tanslay नामक वैज्ञानिक ने 1935 में किया था।

ईकोतन्त्र के अवयव (Components of an Ecosystem)

ईकोतन्त्र के दो मुख्य अवयव हैं, अजैविक अवयच (abiotic components) तथा जैविक अवयव (biotic components) ।

(1) अजैविक अवयव (Abiotic Components)

'अजैविक' (abiotic) शब्द का तात्पर्य निर्जीव से होता है, अतः किसी ईकोतन्त्र में पाए जाने वाले सभी निर्जीव पदार्थ उसके अजैविक अवयव कहलाते है।

(2) **कार्बनिक पदार्थ (Organic substances)**– ईकोतन्त्र के जीवों के मरने पर उनके शरीर से जो पदार्थ पर्यावरण में इधर–उधर विसरित होते हैं, उन्हें कार्बनिक उत्सर्जी पदार्थ (organic detritus) कहते हैं।

(3) **जलवायु (Climate)**– यह एक जटिल अवयव है, जिसमें सौर विकीरण (solar radiation) , जल, विविध गैस इत्यादि की पारस्परिक किया होती रहती है। इन कियाओं से ऊष्मा, धूल, तूफान, आँधी, वर्षा, कोहरा, धुंध, बर्फ, इत्यादि उत्पन्न होते हैं। एक ईकोतन्त्र की जलवायु पर ही उसके उत्पादकों ओर उपभोक्ताओं की संख्या निर्धारित रहती हैं।

(4) **ईकोतन्त्र में खनिज तत्वों एवं गैसों के चक्र (Cycles of mineral elements and gases)–**

(1) **कार्बन चक्र (Carbon cycle)**– सभी सजीवों में कार्बन की एक बड़ी मात्रा पाई जाती है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से वातावरण की कार्बनडाइऑक्साइड और जल से प्राप्त होती है। हरे पौधे या

उत्पादक, प्रकाश संश्लेषण की किया द्वारा और Chemosynthetic bacteria, रसायन संश्लेषण (chemosynthesis) की क्रिया द्वारा परपोषी वातावरण की कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग करके कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं। शाकाहारी परपोषी (heterotrophic) जीव, पौधों को खाकर उनमें बने कार्बोहाइड्रेट से आवश्यकतानुसार कार्बन प्राप्त करते है।

(2) **नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen cycle)**– नाइट्रोजन सब प्रकार की प्रोटीनों, न्युक्लिक अम्लों और जीव द्रव्य (protoplasm) में एक महत्वपूर्ण घटक के रुप में पाई जाती है।

यद्यपि अधिकांश पौधे वायुमण्डन की नाइट्रोजन को nitrogen fixation द्वारा नाइट्रेट लवणों में परिवर्तित किये बिना प्रयोग करने में सक्षम नहीं होते है, परन्तु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से पौधे अपनी नाइट्रोजन वायु से ही प्राप्त करते हैं। केवल कुछ जीवाणु और दुर्लभ पौध (Rare plants) ही वायुमण्डल की स्वतन्त्र नाइट्रोजन का सीधा उपयोग कर सकते हैं। मृत कार्बनिक पदार्थ अथवा निकृष्ट उत्पादों (waste products) में मिलने वाली प्रोटीन एवं अन्य नाइट्रोजनी उत्पाद (nitrogenous products) भी पहले अमोनीकारण जीवाणुओं (ammonifying bacteria, e.g. Bacillus spp) की कुछ जातियां द्वारा अमोनिया में ओर फिर नाइट्रीकारी (nitrifying) जीवाणुओं Nitrobater and Nitrosococcus) द्वारा नाइट्रोजन में बदल दिये जाते है। Nitrobacter और इस प्रकार के अन्य नाइट्रीकारक जीवाणुओं द्वारा नाइट्राइट लवणों को नाइट्रेट लवणों में बदल दिया जाता है, जिससे पौधों द्वारा उनका फिर से उपयोग कर लिया जाता है। वायुमंडल में स्वतन्त्र नाइट्रोजन गैस की पुनः पूर्ति (replenish) करने के लिये नाइट्रेट एवं नाइट्राइट लवण विनाइट्रीकारण (denitrifying) जीवाणुओं द्वारा अपघटित (decomposed) होते रहते हैं। यह स्वतन्त्र नाइट्रोजन राइज़ोबियम (Rhizobium) की कई जातियों द्वारा leguminous पौधों की जड़ो की ग्रन्थियों (nodules) में फिर से स्थापित (fixed) कर दी जाती है।

(3) **फॉस्फोरस चक्र (Phosphorus cycle)**– किसी भी ईकोतन्त्र में जैविक घटक अपनी फॉस्फोरस वायुमंडल एवं मिट्टी से ही प्राप्त करते हैं। यह कार्बनिक पदार्थों का अपघटन (decomposition) होता है तो उनसे मुक्त होकर फॉस्फोरस फिर से वायुमंडल में मिल जाती है।

(4) **सत्फर चक्र (Sulphur cycle)** – फॉस्फोरस की भांति, सल्फर भी प्रोटीन, अमीनों एसिड और विटामिन जैसे पदार्थों का एक प्रमुख अवयव है। सल्फर धातु, सल्फेटों के रुप में चट्टानों और मिट्टी में पाई जाती है।

(5) **ऑक्सीजन चक्र (Oxygen cycle)**– सभी जीवों को श्वसन क्रिया के लिए ऑक्सीजन की आवश्कयता होती है। वायुमंडल में लगभग 20–21 प्रतिशत ऑक्सीजन गैस पाई जाती है।

ईकोतन्त्र दो प्रकार के हैं– (1) प्राकृतिक (natural) और (2) कृत्रिम (artificial) अथवा (manmade) । प्राकृतिक ईकोतन्त्रों में तालाब, झील, नदी, समुद्र, वन, मरुस्थल, घास के मैदान, आदि की गणना होती है तथा कृत्रिम ईकोतन्त्रों में नदियों पर बनाए गए बांध (dams), जल जीवालय (aquarium) , कृषि भूमि (crop lands), उद्यान (gardens) एवं नगर आदि शामिल हैं।

प्राकृतिक ईकोतन्त्र (Natural ecosystems)

(1) **तालाब ईकोतन्त्र (Pond as an ecosystem)**– एक छोटे ईकोतन्त्र का सबसे अच्छा उदाहरण तालाब है, जिसमें एक ईकोतन्त्र में पाए जाने वाले संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक गुणों का स्पष्ट समन्वय पाया जाता है। तालाब ईकोतन्त्र का अध्ययन उसके अजैविक पदार्थों (abiotic substances), उत्पादकों (producers), उपभोक्ताओं (consumers), अपघटकों (decomposers) तथा इन सबके बीच पाए जाने वाली पारस्परिक क्रियाओं (interactions) के अध्ययन द्वारा किया जाता है।

इस प्रकार ही तालाब के विभिन्न स्वपोषी (autotrophic) एवं परपोषी (hetrotrophic) जीवों की संरचना के बारे में जाना जाता है। तालाब में एक ईकोतन्त्र के समस्त बेसिक अवयव पाए जाते हैं। अर्थात् (1) अजैविक पदार्थ, (2) उत्पादक, (3) उपभोक्ता एवं (4) अपघटक। एक तालाब के अजैव अवयव निम्न हो सकते हैं। जल, उसमें घूली कार्बन डाइऑक्साइड, ऑक्सीजन, कैल्सियम, नाइट्रोजन, अमीनों–अम्ल, इत्यादि। इसी प्रकार तालाब के उत्पादकों में विभिन्न प्रकार के जलीय हरे पौधे, उपभोक्ताओं में विभिन्न प्रकार के molluscs, कीट, मछलियाँ, मेढ़क, आदि और अपघटकों में जीवाणु (bacteria), कवक (fungi), आदि की गणना होती है।

भोजन–श्रृंखला और पोषी स्तरः–

पौधों द्वारा भोजन के रुप में ऊर्जा का संचित करना और फिर पौधों से क्रमशः विभिन्न पोषी स्तरों (trophic levels) के जीवों में भोजन के साथ इस ऊर्जा के स्थानान्तरण को ही भोजन श्रृंखला (food chain) कहते है। प्राकृतिक समुदायों (natural communities) के जीव अपनी आवश्यतानुसार अलग–अलग स्त्रोतों से भोजन प्राप्त करते हैं। भोजन के स्त्रेात पोषी स्तर कहलाते है इस श्रृंखला में हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण करके भोजन का निर्माण स्वंय करते हैं। इसी प्रकार पौधों को खाने वाले अर्थात् शाकाहारी जन्तु (herbivoures) द्वितीय पोषीस्तर (second trophic level) या प्राथमिक उपभोक्ता स्तर (primary consumer level) को तथा शाकाहारी जन्तुओं को खाने वाले मांसाहारी जन्तु (carnivores) तृतीय पोषी स्तर (third trophic level) या द्वितीयक उपभोक्ता स्तर (Secondary consumer level) को बनाते है। अन्त में, पौधों तथा जन्तुओं दोनों को खाने वाले सर्वाहारी जन्तु (omnivores) चतुर्थ पोषी स्तर (fourth trophic level) या तृतीयक उपभोक्ता स्तर (tertiary consumer level) बनाते हैं। उदाहरणार्थं, जल में उगी शैवालों और छोटी मछलियों को खाने वाली बड़ी मछलियाँ चतुर्थ पोषी स्तर पर है।

भोजन श्रृंखला में विभिन्न उपभोक्ता स्तरों पर भिन्न–भिन्न विकल्प।

पारिस्थितिक पिरामिड (Ecological Pyramids)

एक ईकोतन्त्र में विद्यमान विभिन्न पारस्परिक सम्बन्धों को आलेखों द्वारा भी प्रदर्शित किया जा रहा है। ईकोतन्त्र के ऐसे आलेखों को पारिस्थितिक पिरामिड (ecological pyramids) कहते है। इस प्रकार के पारिस्थितिक पिरामिड, में ईकोतन्त्र के प्रत्येक पोषी स्तर पर (1) जीवों की अलग–अलग संख्या, (2) ऊर्जा की मात्रा और (3) बॉयोमास (biomass) की मात्रा का चित्रण होता है। इस पिरामिड में सबसे नीचे प्रथम पोषी स्तर अथवा उत्पादक स्तर (producer level) होता है और शेष स्तर क्रमागत रुप से एक दूसरे के ऊपर व्यवस्थित होकर पिरामिड का निर्माण करते है। ईकोतन्त्रों के विभिन्न पोषी स्तरों पर जीवों की बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों के अनुसार ये पिरामिड अग्र तीन प्रकार के हो सकते है।

(1) संख्याओं का पिरामिड (Pyramid of Numbers)

(2) ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

(3) बॉयोमास का पिरामिड (Pyramid of Biomass)

(1) संख्याओं का पिरामिड (Pyramid of Numbers)

संख्याओ ंके पिरामिड में ईकोतन्त्र के विभिन्न पोषी स्तरों पर पाये जाने वाले जीवों की अर्थात्, उत्पादकों, शाकाहारियों तथा मांसाहारियों, इत्यादि की प्रति ईकाई क्षेत्रफल में पाई जाने वाली, आपेक्षिक संख्याओं को प्रदर्शित किया जाता है। घास के मैदान, वन प्रदेश और तालाब के ईकोतन्त्रों में संख्या पिरामिड सदा सीधे (upright) होते है उदाहरणार्थ, एक वन ईकोतन्त्र में घासों व वृक्षों (उत्पादकों) की संख्या सदा सबसे अधिक होती है। इसके बाद प्राथमिक उपभोक्ताओं अर्थात् शाकाहारियों जैस हीरन, खरगोश, चूहे इत्यादि की संख्या उत्पादकों से कम, मांसाहारी, द्वितीयक उपभोक्ताओं (जैसे भेड़िये, चीते, लोमड़ी, इत्यादि) की संख्या शाकाहारियों

से भी कम, और तृतीयक उपभोक्ताओं (omnivores) जो पिरामिड के शीर्ष पर होते है, उनकी संख्या सबसे कम होती है।

कुछ अन्य ईकोतन्त्रों में उपरोक्त से बिल्कुल विपरीत परिस्थिति पायी जाती है अर्थात् उत्पादकों की संख्या सबसे कम और बाद के क्रमागत स्तरों मे जीवों की संख्या में क्रमशः वृद्धि होती जाती है, जिसके कारण संख्याओं का सम्बन्ध उल्टा हो जाता है। उदाहरणार्थ, एक वृक्ष ईकोतन्त्र में उत्पादकों की संख्या सबसे कम (केवल एक वृक्ष), प्राथमिक उपभोक्ता (शाकाहारी पक्षी, गिलहरी इत्यादि) की संख्या उससे अधिक, तथा शाकाहारियों पर आश्रित उडुसो (bugs) तथा जुओं (lice) आदि परजीवी द्वितीयक उपभोक्ताओं की संख्या प्राथमिक उपभोक्ताओं से भी अधिक हो जाती है। इस प्रकार इस उल्टे सम्बन्ध के कारण संख्याओं का पिरामिड भी उल्टा बनता है।

(2) ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of Energy)

यदि भिन्न–भिन्न पोषी स्तरों पर प्रति वर्ग मीटर प्रति वर्ष (per square meter per year) पायी जाने वाली प्रयुक्त ऊर्जा की मात्र के सम्बन्ध को रेखा चित्र द्वारा प्रगट किया जाये तो अवश्य ही उत्पादक स्तर से भिन्न–भिन्न क्रमिक उपभोक्ता स्तरों से होता हुआ एक सीधा पिरामिड ही बनेगा।

(3) बॉयोमास का पिरामिड (Pyramid of Biomass)

एक जीव में सजीव पदार्थ की जितनी मात्रा होती है वह उसका बॉयोमास (Biomass) कहलाता है। किसी जीव का बॉयोमास ताजे (fresh) अथवा शुष्क (dry) भार के रुप में नापा जा सकता है। घास के मैदान और वन जैस स्थलीय ईकोतन्त्रों के भिन्न–भिन्न पोषी स्तरों पर पाये जाने वाले जीवों के भार पर आधारित पिरामिड नीचे से ऊपर की ओर सीधे होते हैं, क्योंकि इन तन्त्रों में उत्पादकों का भार हमेशा अधिकतम होता है।

उत्पादकों के बाद क्रमशः प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक उपभोक्ताओं के भार क्रमशः कम होते जाते हैं और एक सीधा बॉयोमास पिरामिड बन जाता है।

इसके विपरीत तालाब ईकोतन्त्र का बॉयोमास पिरामिड सदा उल्टा होता हैं, क्योंकि तालाब ईकोतन्त्र में उत्पादक जैसे शैवालों का भार सबसे कम होता है इसके बाद पाये जाने वाले पोषी स्तरों में क्रमशः प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक उपभोक्ताओं का भार क्रमिक रुप से बढ़ता जाता है।

पारिस्थितिक अनुकूलन (Ecological Adaptations)

पोधों में पारिस्थितिक अनुकूलन (Ecological Adaptations in Plants)

पारिस्थितिक अनुकूलनों के आधार पर 1903 में शिम्पर (Schimper) ने पौधों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया था– (1) जलाद्भिद (Hydrophytes), (2) समोद्भिद (mesophytes), (3) मरुद्भिद (xerophytes) । तीनों श्रेणियों का क्रमिक वर्णन निम्न है।

(1) जलोद्भिद (Hydrophytes)

जलोद्भिद (hydrophytes ; Gr. hydor= water, phyton=plant) वे पौधें होते हैं, जो जल में अत्यन्त अधिक जल वाली मिट्टी अर्थात् दलदली भूमि में उगते हैं।

(1) जलोद्भिद (Types of hydrophytes)– जल की कमी व बाहुल्य को उनकी आवश्यकता एवं आवास मानकर जलोद्भिद को फिर से तीन संवर्गों में बांटा गया है।

(1) मुक्त प्लावी (free floating)– वे जलोद्भिद जो जल की सतह पर स्वतन्त्र रुप से तैरते रहते हैं, मुक्त प्लावी जलोद्भिद कहलाते हैं, जैसे Wolffia, Lemma, Spirodella, Azolla, Salvinia, Eichhornia। ये जल और

वायु के सीधे सम्पर्क में रहते हैं परन्तु मिट्टी से इनका कोई सम्पर्क नहीं होता हैं

(2) निमग्न प्लावी (Submerged floating)–निमग्न प्लावी जलोद्भिद जल के अन्दर उगते हैं। इनका वायु से कोई सम्पर्क नहीं रहता है। उदाहरणार्थ, Ceratophyllum, Utricularia, Najas, Hydrilla, इत्यादि।

(3) जल स्थली जलोद्भिद (Emergent or amphibian hydrophytes)– जलस्थली जलोद्भिद, उथले जल (Shallow waters) में उगते हैं और उनके प्राकुर (Shoots) जल की सतह से ऊपर आकर वायु में फैले रहते है। दलदली भूमि (marshy or swampy) में उगने वाले पौधें भी इसी प्रकार के होते हैं और लवणोद्भिद (halophytes) कहलाते हैं, जैसे Sagittaria, Typha, Ranunculus, इत्यादि।

इन पौधों की बाह्मत्वचा (epidermis) बहुत पतली होती है और कभी–कभी उसके ऊपर एक पतली (cuticle) भी पाई जाती है। अतः बाह्मत्वचा की कोशिकायें जल और गैसों के लिए प्रवेश्य (permeable) हो जाती है और जड़ो के अभाव मे जल से गैसों तथा पोषक–तत्वों का सीधा अवशोषण करती रहती है।

जल के अन्दर रहने वाले पौधों में रन्ध्रों का अभाव होता है ओर जल की सतह पर तैरने वाले पौधों की पत्तियों की ऊपरी सतह पर रन्ध्र होते है।

समोद्भिद (Mesophytes)

समोद्भिद (mesophytes ; Gr. mesos-intermediate, phyton=plant), वे पौधें होते हैं, जो आर्द्रता और तापमान की सामान्य परिस्थितियों में भूमि की सतह पर उगते हैं। ये जलोद्भिद और मरुद्भिद के बीच की श्रेणी के पौधें होते है।

मरुद्भिद (Xerophytes)

मरुद्भिद (xerophyte ; Gr. xero=dryton=plant), वे पौधे होते हैं, जो अपेक्षाकृत शुष्क स्थान में उगते हैं।

मरुद्भिद का मूलतन्त्र (root system) गहराई से जल का अवशोषण करने के लिए लम्बा हो जाता है। कुछ शाकीय मरुद्भिद (herbacious xerophytes) की मूल मोंसल (fleshy) होकर जल की एक बड़ी मात्रा को इकठ्ठा भी कर लेती है जैसे Asparagus में। इनकी मूलों में मूल रोम (root haris) भी सुविकसित होकर लम्बे हो जाते है।

Cactacease कुल के मरुद्भिद के तने जल संग्रह हेतु माँसल हो जाते हैं जिससे वे मरुस्थल के जलाभाव में अपनी जलापूर्ति कर सकते हैं। इनके तने कभी–कभी चौड़े या गोलाकार होकर पत्ती का रुप भी धारण कर लेते हैं, और phylloclade कहलाते हैं। जैसे नागफनी (Opuntia)।

लवणमृदोद्भिद (Halophytes)

लवणमृदोद्भिद वे पौधे हैं, जो सोडियम क्लोराइड, मैगनीशियम क्लोराइड और मैगनीशियम सल्फेट जैस घुलनशील लवणों से युक्त शुषक भूमि में उगते हैं, इन्हीं पौधों को मैग्रोव पौधे (mangrove plants) भी कहते हैं।

इनकी जड़ो से विशेष प्रकार की शाखायें गुरुत्व मे प्रतिकूल (negatively geotropic) पृथ्वी से बाहर सतह पर निकल आती हैं, और वायु से ऑक्सीजन गैस लेकर श्वसन में सहायक होती है। इन मूलों के विनिमय (exchange) के लिए छोटे–छोटे छिद्र (proes) होते हैं। ऐसी जड़ो को pneumatophores कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लवणमृदोद्भिद, जो दलदली भूमि से उगते हैं, उनके बीज पैतृक पौधे (parent plant) पर लगे हुए ही अंकुरित हो जाते है इस परिघटना को विविपैरी (vivipary) कहते हैं। उदाहरणार्थ, Rhizophora, Aegiceras, Aegiatilies, Ceriops, Kandellia, इत्यादि। ये पौधें चट्टानों और पथरीली, रेतीली, कीचड़ या दलदली भूमि मे उग सकते हैं। इसी आधार पर ये निम्न चार प्रकार के होते हैं– (1) शैलरागी लवणमृदोद्भिद (lithophilous halophytes), (2) बालुकारागी

लवणमृदोद्भिद (psammophilous halophytes), (3) मृतिकारागी लवणमृदोद्भिद (pelophilous halophytes) और (4) लवणरागी लवणमृदोद्भिद (helophilous halophytes) । लवणरोगी लवणमृदोद्भिद फिर से दो में विभक्त किए जाते हैं– (1) लवणी–दलदली (salt swamp) और लवणी–मरुस्थली लवणरागी (salt desert helophilous), और (2) बेलांचल दलदली बन लवणमृदोद्भिद (littoral swamp-forest) या मैंग्रोव (mangroves) । भारत में मैंग्रोव वनस्पति बम्बई, केरल, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह के सागरी तटों पर पायी जाती हैं। ये पौधे ऐसे स्थान में उगते हैं जहाँ रेतीली, दलदली और लवणी मिट्टी होती है, वातावरण में आर्द्रता अधिक तथा वर्ष भर तापमान लगभग एक सा बना रहता हैं।Rhizophora mucronata, Sonneratia और Ceriops मैंग्रोव वरस्पति के सामान्य उदाहरण हैं।

कुछ लवणमृदोद्भिद (जैसे Rhizophora, Aegiceras) इत्यादि में Vivipary पायी जाती हैं। vivipary पौधें के बीच पौधे पर लगे–लगे ही अंकुरित हो जाते हैं।

पर्यावरणी प्रद्षण (Environmetal Pollution)

"प्रदूषण एक ऐसा परिवर्तन है, जो हमारे चारों ओर की वायु, जल तथा धरती के भौतिक (physical), रासायनिक (chimical) या जैविक (biological) लक्षणों में और जो मानव जीवन पर, औद्यौगिक प्रगति पर, जीवन की दशाओं पर और सांस्कृतिक मूल्यों (cultural assests) पर हानिकारण प्रभाव डाल रहा है।

(1) अजैवककारकीय प्रदूषक (non-biologiol pollutants)– ये प्रदूषक mercuric salts, long chain phenolic chemicals और D.D.T जैसे पदार्थ होते हैं जो जीवों द्वारा या तो प्राकृतिक वातावरण में बिल्कुल निम्नीकृत (degraded) नहीं होते और यदि होते हैं तो अत्यन्त धीरे–धीरे होते हैं। और इसी कारण प्रदूषण में इनका योगदान कम होता है।

(2) **Biodegradable pollutants**– इस संवर्ग में वह प्रदूषण आते है, जो प्राकृतिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत शीघ्रता से अपघटित (decompose) हो जाते है, जैसे घरेलू कचरा (domestic waste) ये प्रदूषण वातावरण में असंतुलन उत्पन्न प्रदूषण फैलाते हैं।

वायु प्रदूषण (Air pollution)

वायु प्रदूषण अधिकांश औद्योगिक (industrial) एवं महानगरों (metropolitancities) में पाया जाता है और अत्यन्त हानिकारक और सामान्य प्रदूषण होता हैं। यह प्रदूषण प्राकृतिक गैस, पैट्रोलियम, उत्पाद (pertoleum product) कोयला, लकड़ी, इत्यादि के जलने से होता है।

वायु प्रदूषकों के प्रकार और उद्‌गम (Kinds and sources of air pollutants) इन सब उद्‌गमों से मानव स्वास्थ्य के लिए घातक CO, CO_2, SO_2 तथा नाइट्रोजन की आक्साइडें (N_2O, NO, NO_2, N_2O_3, और N_2O_5) और अनेक प्रकार के हाइड्रोकार्बन वायुमण्डन में निरन्तर छोडे जाते हैं।

ऑटोमोबाइल्स (Automobiles)– विविध प्रकार के ऑटोमोबाईल्स प्रदूषण के सबसे बड़े उद्‌गम है। ऑटोमोबाइलों, रेल के इंजिनों, वायुयानों, जलयानों इत्यादि में ईंधन के रुप में प्रयोग होने वाले पैट्रोल, डीजल, कोयले, इत्यादि के जलने से उत्पन्न कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रोजन पराक्साइड जो हाइड्रोकार्बन वायुमण्डल में पहुंचकर एक बड़ी समस्या उत्पन्न कर देते हैं।

अनेक गैसीय प्रदूषक और सूक्ष्म ऐरोसोल (fine aerosols) वायुमण्डल के ऊपरी भाग में पहुंचकर सूर्य प्रकाश के बेधन (penetration) और अवशोषण (abrorption) को मूल रुप से प्रभावित करते हैं। इन प्रदूषकों के फलस्वरुप पृथ्वी की सतह पर पहुंचने वाली सूर्य प्रकाश की ऊर्जा में कमी हो जाती है जिससे विश्व जलवायु पर शीतलन प्रभाव (cooling effect)

होता है। इसके अलावा तेजी से हो रहे औद्योगीकरण तथा मनुष्य को अन्य क्रियाओं के फलस्वरुप वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड जैसी कुछ अन्य गैसें पहुंचती रहती हैं जिनके प्रभाव से उस स्थान का तापमान कुछ अधिक भी हो जाता हैं। 'विश्व तापन' (global warming) की इस परिघटना को –ग्रीनहाऊस प्रभाव' (green house effect) भी कहते है। वायुमण्डल में अत्यन्त कम मात्रा में पाई जाने वाली निम्न गैसों का भी ग्रीन हाऊस प्रभाव में योगदान होता है, जैसे मीथेन (methane), नाइट्रस ऑक्साइड या लाफिग गैस, क्लोरोफ्लोरोकार्बन (chloroflourocarbons) और ओजोन। हाल ही के अध्ययनों से ज्ञात होता है कि यदि विश्व के वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड इसी प्रकार बढ़ती रही तो 2030 तक वायुमण्डल के स्थायी तापमान में 1.5 से 4.5 डिग्री सी की वृद्धि हो जाएगी, जिसके फलस्वरुप ध्रुवों पर जमी बर्फ पिघल जाएगी और समुद्र तल में 20 से 140 सेमी की वृद्धि होगी। इससे समुद्र तटों पर बाढ़ के कारण अत्यधिक विनाश होगा।

प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Natural Resources)

संसार के पौधों वे जन्तुओं की 4 प्रतिशत जातियाँ संकटग्रस्त (endangered) समझी जाती है।

भारती की वनस्पति– किसी भी देश के प्राकृतिक संसाधनों का एक भाग उसकी प्राकृतिक वनस्पति है जो नित्यदित मनुष्य के कार्य कलापों से प्रभावित होती रहती हैं।

वन वनस्पति– तापक्रम के आधार पर भारत में चार प्रकार के वन पाए जाते हैं। (1) उष्ण कटिबन्धीय वन (tropical forests), देश के उष्ण मैदानी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ अधिक वर्षा होती हैं, यह वन घने होते हैं, परन्तु सूखे क्षेत्रों में यह वन प्रायः झाड़ियों के रुप में पाए जाते हैं। (2) पर्वतीय उपोष्ण वन (Montane subtropical forests), प्रायः दक्षिणी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जैसे नीलगिरी महाबलेश्वर व पंचमढ़ी, जिनकी ऊँचाई 3000 से 5600 फीट तक हैं। दक्षिणी भारत के ऐसे वनों में

Eugenia, Mangifera, Ficus, Piper, Gnetum तथा Smilax जैसे वृक्ष मिलते हैं। (3) शीतोष्ण वन (temperate forests), 5300 फीट से अधिक ऊँचाई पर मुख्यतः हिमालय व नीलगिरी पर्वतों पर पाए जाते हैं। हिमालय पर्वत पर ओक (oaks) व कोनिफर (conifer), का बाहुल्य मिलता है दक्षिण में नीलगिरी पर्वत पर शोला (sholas) नामक वृक्ष पाए जाते हैं। यह पर्वत अधिक सघन होते है और वृक्षों की शाखाओं पर मास (mosses), अनेक आरोही लताएँ (climbers) तथा एपिफाइड (epiphytes) भी पाए जाते हैं। (4) एलपाइन वन (alipine forests) प्रायः 11,000 फीट से अधिक ऊँचाई पर मिलते हैं, जहाँ वृक्षों की लम्बाई पर्वतों की ऊँचाई पर मिलते हैं, जहाँ वृक्षों की लम्बाई पर्वतों की ऊँचाई के साथ घटती जाती हैं। Sedum, Primula, Saxifraga तथा लाइकेन (lichens) जैसे कम लम्बाई के पौधे ही यहाँ अधिक संख्या में मिलते हैं।

घासस्थल वनस्पति (Grassland vegetation)

भारत में प्राकृतिक घासस्थल बहुम कम संख्या में मिलते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास व संरक्षण–एम समस्या

(1) संसाधनों का ह्रास (Depletion of resources)

प्राकृतिक संसाधनों में सबसे अधिक गम्भीर समस्या वनों के विनाश की है। हाल में किए गए कुछ अध्ययनां के अनुसार संसार के वनों का क्षेत्र वर्ष 1900 से 1975 के बीच 700 करोड़ हैक्टेयर (7000 मिलियन) से घटकर 289 करोड़ हैक्टेयर रह गया है। और इन अनुमानों के अनुसार वर्ष 2000 में यह घटकर केवल 237 करोड़ हैक्टेयर रह जाएगा। हाल के सर्वेक्षणों के अनुसार वन विनाश की दर प्रति वर्ष बढ़ रही है। और प्रति वर्ष 14 से 20 करोड़ भूमि वन विहीन हो जाती है। इन वनों के विनाश का अधिकाशं भाग (50 प्रतिशत) एशिया में है, और इसका मुख्य कारण जनसंख्या की वृद्धि है।

प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण (Conservation of natural resoruces) – प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की दो मुख्य विधियाँ है– (1) स्वस्थाने

संरक्षण(in situ conservation) तथा (2) उत्स्थाने संरक्षण (ex situ conservation)।

इसी उद्देश्य से अनेक क्षेत्रों को कानून द्वाा सुरक्षित क्षेत्र (protected areas) घोषित कर दिया जाता है। राष्ट्रीय उद्यान, सैंकच्यूरी, प्राकृतिक रिज़र्व (natural reserves), प्राकृतिक स्मारक (natural monuments) तथा अनेक अन्य सुरक्षित स्थल, इसी प्रकार के संरक्षण के उद्देश्य से बनाए जाते है। इसी कारण पालतू जन्तुओं के लिए यह विधि उपर्युक्त नही मानी जाती है।

उत्स्थाने संरक्षण (ex situ conservation)– संरक्षण की इस विधि में प्राकृतिक संसाधनों की उनके आवास से हटाकर अन्य स्थानों में सुरक्षित रखा जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आनुवंशिक संसाधन केन्द्र (genetic resource centres), जन्तु उद्यान Zoological parks), वनस्पति उद्यान (Botanical gardens) आदि की स्थापना की जाती है। जीन बैंक (gene banks) की विचाराधारा भी इसी उद्देश्य की परिचायक है, जिसमें बीज, वीर्य (semen), अण्डे (ova), कोशिका (cells), पराग (pollen) आदि को सुरक्षित रखने की परियोजनाएँ बनाई जाती हैं। हमारे देश में भी राष्ट्रीय पादप आनुवंशिकी संसाधन संस्थान (National Bureau of Plant Genetic Resources= NBPGR) की स्थापना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई हैं।

संकटग्रस्त पौधे व जन्तु–लाल आंकड़ो की पुस्तक (Endangered Plants and Animals-Red Data Books)– संसार के पौधों व जन्तुओं की अनेक जातियाँ, संरक्षण न मिलने के कारण भूतकाल में विलुप्त हो चुकी हैं। और अनेक अन्य जातियों की संख्या ऐसी तीव्र गति से कम हो रही है कि उनके विलुप्त होने की सम्भावना बनी हुई है। इस संकट को रोकने के लिए पोधों व जन्तुओं की उन जातियों की सूचियाँ तैयार की गई है, जिनको संकटग्रस्त (endangered) जातियों की संज्ञा दी गई हैं।

संकटग्रस्त पौधे तथा लाल आंकड़ो की पुस्तक (Endangered Plants and Red Data Book)– उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए संकटग्रस्त पौधों की सूची तैयार करने के लिए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग (Botanical Survey of India=BSI) ने एक योजना बनाई है, जिसके अन्तर्गत देश के 3/5 भाग का सर्वेक्षण पौधों की जातियों के लिए किया जा चुका है और शेष 2/5 भाग का सर्वेक्षण वर्ष 1998 तक समाप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। वर्ष 2000 A.D. तक भारत के वनस्पति जात (flora) का प्रकाशन 24 खण्डों (volumes) में होने की आशा है। ऐसा अनुमान है कि विश्व में पौधों की लगभग 2,5000 जातियों में से लगभग 15,000 भारत में पाई जाती है।

भारतीय सरकार के पारिस्थितिकी विभाग (Department of Enviornment=D.O.En.) ने इस सम्बन्ध में संकटग्रस्त जातियों की सूची एक पुस्तक में प्रकाशित की है जिसे Red Data Book की संक्षा दी गई है इस पुस्तक के दो खण्ड (Volumes I, II), वर्ष 1987–88 व वर्ष 1988–89 में प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें संकटग्रस्त जातियों की क्रमशः 235 व 200 जातियों के नाम सूचिबद्ध किये गये हैं। इसी प्रकार की Red Data Book, अन्तराष्ट्रीय संगठनों (जैसे IUCN= International Unio for Conservation of Nature and Natural Resorces) द्वारा भी प्रकाशित हुई हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति व प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संगठन (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources=ICUN)– प्रकृति व प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण हेतु अनेक राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय संगठनों व समितियों का गठन किया गया है, जिनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण IUCN है, जिसका गठन वर्ष 1948 में हुआ था।

राष्ट्रीय उद्यान व पशु विहार (National Parks and Sanctuaries)– वन्य जीवन (world life) के स्वस्थाने संरक्षण (in situ conservation) हेतु अनेक

परियोजनाएँ बनाई गई हैं, जिनके अन्तर्गत सुरक्षित क्षेत्रों की घोषणा भी की गई हैं। वर्ष 1989 में भारतवर्ष में 67 राष्ट्रीय उद्यान व 394 पशु बिहार थे जो 1,41,298 वर्ग किमी में फैली हैं और समस्त भौगोलिक क्षेत्र का 4 प्रतिशत बनाती हैं। राष्ट्रीय उद्यानों व पशु विहारों में मुख्य लक्षण व उनके बीच पाए जाने वाली भिन्नताओं।

राष्ट्रीय उद्यान (National Parks)–राष्ट्रीय उद्यान मानव के लिए मनोरंजन प्रदान करने तथा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन है।

देश का पहला राष्ट्रीय उद्यान 1936 में "हैली नेशनल पार्क" के नाम से स्थापित हुआ, जो अब "जिम कार्बेट नेशनल पार्क" के नाम से पौड़ी नैनीताल में 521 वर्ग किमी क्षेत्र में स्थित है। जिसनमें से 338 वर्ग किमी 'Core' क्षेत्र और शेष 'buffer zone' है। Core क्षेत्र का प्रयोग मानव द्वारा नहीं किया जा सकता, परन्तु 'buffer zone' में संरक्षण को ध्यान में रखकर खेती आदि की जा सकती है। इसी प्रकार 1980 में "पुष्पावती नेशनल पार्क" व 1986 में "राजा जी नेशनल पार्क" की स्थापना हुई। राष्ट्रीय उद्यानों की संख्या अब 66 तक हो गई हैं।

पशु विहार (Sanctuaries)– पशु विहार वह प्राकृतिक पर्यावरणीय क्षेत्र हैं जो सरकार द्वारा निर्धारित व संगठित किए गए हैं। इन क्षेत्रों में जानवरों को पकड़ने या मारने तथा शिकार करने पर प्रतिबन्ध रहता है और विनाशकारी अनुमति की यह गतिविधियाँ वर्जित रहती हैं। राष्ट्रीय उद्यानों व पशु विहारों के लक्षण व अन्तर को सारणी 8.6 में सूचिबद्ध किया गया है। पशु विहारों की स्थापना भी 1934 में वैधानिक व्यवस्था द्वारा राष्ट्रीय उद्यानों के साथ की गई थी।